समयसार, गाथा ३२ नीचे चलता है न? **इस प्रकार....** फिर से - है न भावार्थ के ऊपर? **भाव्यभावक भाव के संकरदोष को दूर करके दूसरी निश्चयस्तुति है...** दूसरी अर्थात् दूसरे नम्बर की — ऐसा नहीं। पहले नम्बर की स्तुति से दूसरे नम्बर की

स्तुति ऊँची है। समझ में आया ? पहले में तो भगवान आत्मा, राग से भिन्न, इन्द्रियाँ जो जड़, भावेन्द्रिय, जड़ इन्द्रिय और इन्द्रिय के विषय — देव, गुरु, और शास्त्र, सबसे लक्ष्य छोड़कर अपने स्वसंवेदनज्ञान के बल से उनका एकत्व तोड़ दिया, यह प्रथम संकरदोष का नाश किया। संकर का अर्थ ? पर के साथ संयोग सम्बन्ध। संकर - संयोग सम्बन्ध, उसका नाश किया। आहाहा!

एकत्वबुद्धि जो पर-इन्द्रिय का — देव-शास्त्र-गुरु हो या जड़ इन्द्रिय (हो), वस्तुतः तो प्रभु आत्मा की अपेक्षा से जड़ इन्द्रिय, भावेन्द्रिय और भगवान, ये सब अनात्मा है, परद्रव्य है, अनात्मा है। आहाहा! अनात्मा का सम्बन्ध जो लक्ष्य है, उसे छोड़कर भगवान ज्ञायकस्वभाव चैतन्य परमात्मस्वरूप सच्चिदानन्दस्वभाव का स्वसंवेदन करना, वह प्रथम दो पदार्थ की एकता के दोष का नाश किया। समझ में आया ? सूक्ष्म बात बहुत, बापू!

अब, ऐसा होने पर भी, धर्मी को-ज्ञानी को-सम्यग्दृष्टि को... आहाहा! कर्म का उदय जो मोह आदि होता है, उसके अनुसरण करके होनेवाला विकारी भाव्य, यह कर्म / भावक है और उसके अनुसरण से सम्यग्दृष्टि ज्ञानी को भी होनेवाली भाव्य अर्थात् विकारी पर्याय जो है, वह बोल चलता है और राग-द्वेष... आहाहा! उस पर्याय का सम्बन्ध, स्वभाव के निर्विकल्प समाधि का अनुसरण विशेष करके वह सम्बन्ध तोड़ना, वह आत्मा की, परमात्मस्वरूप की स्तुति का दूसरा प्रकार है। आहाहा! समझ में आया ?

मुनि हो, भावलिंगी (हो), उनको भी जब तक कर्म का भावक / भाव करनेवाला निमित्त... परन्तु है अपनी पर्याय में अपने से... मुनि को भी रागादि पंच महाव्रत का विकल्प, वह राग है। आहाहा! वह भावक का भाव्य अपनी पर्याय में होनेवाली दशा, उस समय विकृत अवस्था का उत्पन्न होना, मुनि को-भी समकिती को भी... आहाहा! होता था। उसका भाव्य के ओर की जो विकृत अवस्था है, उसका लक्ष्य छोड़कर अन्तर निर्विकल्प स्वसंवेदनज्ञान के बल से भाव्य उत्पन्न नहीं हुआ, यह दूसरे प्रकार की स्तुति कही गयी है। आहाहा! ऐसा मार्ग है भाई! समझ में आया ? यहाँ तक आया है — **भाव्यभावक भाव**। है ?

भाव्यभावक भाव — अपनी पर्याय में विकृत होने की योग्यता वह भाव्य; भावक

(अर्थात्) कर्म का निमित्त। भाव्य, भावक का भाव। अरे! अपनी पर्याय में समकिती को ज्ञानी को, धर्मात्मा को, आहाहा! जब तक वीतरागता न हो, तब तक अपनी पर्याय में भाव्य अर्थात् विकारी योग्यता-दशा; भावक अर्थात् निमित्त कर्म, वह भाव्यभावक जो भाव, वह संकरदोष है, उस संकर अर्थात् सम्बन्ध दोष — पहले में एकत्व का संकर दोष था; इसमें सम्बन्ध का दोष है। क्या कहा, समझ में आया? संकर, संयोग, सम्बन्ध — तीनों का एक अर्थ है। पहले में तो जड़ इन्द्रिय, भावेन्द्रिय, और इन्द्रिय के विषय, ये सब परज्ञेय हैं। समझ में आया? और स्वज्ञेय, ज्ञायक है। स्वज्ञेय, ज्ञायक के साथ यह भावेन्द्रिय, द्रव्येन्द्रिय और यह पदार्थ — भगवान तीन लोक के नाथ और उनकी वाणी, आहाहा! जो परज्ञेय हैं, उस परज्ञेय के सम्बन्ध से एकत्वबुद्धि से जो मिथ्यात्व उत्पन्न होता था, उस पर का लक्ष्य छोड़कर, मैं ज्ञानस्वभाव से 'अधिकम्' पृथक् **पूर्णम् अनुभवति जानाति वेदयति संचयति** — यह प्रथम जितेन्द्रिय स्तुति कही गयी है। आहाहा! समझ में आया?

जो राग और विकार की प्रशंसा करता था और परद्रव्य की प्रशंसा करता था, तब तक तो वह विकारीदशा है। आहाहा! अपना स्वभाव चिदानन्द भगवान, परद्रव्य के सम्बन्ध से भिन्न है — ऐसी स्वभाव में एकत्वबुद्धि होना और पर से एकत्वबुद्धि का व्यय होना, आहाहा! स्व की एकत्वबुद्धि का उत्पाद होना उत्पाद-व्यय और ध्रुव - तीन हैं न? आहाहा! पर की एकत्वबुद्धि का - भगवान से, वाणी से मुझे लाभ होगा, वह तो परद्रव्य है; परद्रव्य से स्वद्रव्य में लाभ कभी नहीं होगा। आहाहा!

श्रोता : परद्रव्य उपकार तो करता है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : उपकार का अर्थ निमित्त, बस! उपकार का अर्थ — उपकार करता है ऐसा नहीं है। सर्वार्थसिद्धि वचनिका में ऐसा अर्थ किया है। उपकार का अर्थ निमित्त है, परन्तु निमित्त है, उसके सम्बन्ध का लक्ष्य करने से राग होता है। आहाहा! ऐसी बात।

समकिती को भी पर का लक्ष्य छोड़कर स्वसंवेदन — पर से भिन्न, पर से अधिक, पर से पृथक्, पर से पृथक् परिपूर्ण प्रभु... आहाहा! उसका अनुभव हुआ, वह तो पर्याय है। अनुभव हुआ, वह पर्याय है परन्तु वह अनुभव पर्याय कब होती है? पर का लक्ष्य छोड़कर अपने भगवान पूर्णानन्द के नाथ को ध्येय बनाकर.... ऐसी शर्तें बहुत कठिन।

अपनी पर्याय में स्वसंवेदन — वह ज्ञान की वेदनदशा प्रगट करना। वस्तु तो वस्तु है। समझ में आया? यह तो अगाधवस्तु है भाई! आहाहा! जो अपनी चीज, परद्रव्य के सम्बन्ध से भिन्न, अधिक, पूर्ण (है) उसका ऐसा स्वसंवेदन में अनुभव करना, वह प्रथम सम्यग्दर्शन ज्ञान और चारित्र का अंश है। वह प्रथम स्तुति कही गयी है, क्योंकि जो उसकी प्रशंसा नहीं करता था और निमित्त की प्रशंसा करता था, तब तक आत्मा की अस्तुति थी, ऐसी बात है। पाटनीजी! ऐसा अभी तो कहीं है नहीं, यह तो स्वयं कहते हैं, भाई! यह तो....

बापू! मार्ग यह है भाई! नहीं... नहीं... बाहर क्या करें? लोग ऐसा कहते हैं, यह एकान्त है। प्रभु! कहो, मार्ग प्रभु! यह है। आहाहा! आहाहा! परद्रव्य और परद्रव्य के लक्ष्य से होनेवाली विकृत अवस्था से भगवान अन्दर भिन्न है और भिन्न है, वह परिपूर्ण है और भिन्न है, वह पर से अत्यन्त भिन्न है; कथंचित् भिन्न और कथंचित् एकत्व — ऐसा है नहीं। आहाहा! यह मार्ग तो देखो! यह आत्मज्ञान-सम्यग्दर्शन हुआ, तथापि पर्याय में कर्म का-भावक/निमित्त और उस ओर का झुकाववाला भाव्य अर्थात् विकार अवस्था। **मोह....** पहले मोह लिया है। यह मोह, मिथ्यात्व नहीं। मोह पद लिया है न? मिथ्यात्व नहीं। परतरफ की सावधानी। मोह, अर्थात् परतरफ की सावधानी, विकारी अवस्था। आहाहा! उसको धर्मी जीव, पर के लक्ष्य से जो उत्पन्न थी, उसको स्वभाव का आश्रय करके उपशम कर देते हैं।

यह पहली उपशम की स्तुति है। समझ में आया? आहाहा! उपशमश्रेणी, आठवें गुणस्थान से शुरु होती है न? यह धारा ली है। ज्ञानी को भी, आहाहा! सम्यग्दृष्टि को भी, जब तक उपशमश्रेणी न जाये (चढ़े), तब तक कर्म के निमित्त के लक्ष्य से भाव्य अर्थात् विकारी मोह दशा थी, चारित्र का दोष... आहाहा! उसको दूर से हटाकर - ऐसा आया है। दूर से हटाकर का अर्थ कि निमित्त की ओर का झुकाव ही छूट गया, फिर किया और छोड़ना - ऐसा नहीं। भावक - भावक — भावक क्यों कहा? कि निश्चय से विकार का कर्ता निमित्तरूप से वह कहा गया है। यह भाव्य है। आहाहा! इस भाव्य को दूर से — उत्पन्न नहीं होने देना, उत्पन्न ही नहीं होने देना - ऐसा है न? दूर से हटाकर है न? आहाहा!

यहाँ पहले यह आ गया है न **बलपूर्वक मोह का तिरस्कार करके....** आहाहा!

यहाँ तो पर्याय में; द्रव्य में नहीं; द्रव्य तो पूर्ण अखण्डानन्द है। पर्याय में कमजोरी से भावक के लक्ष्य से विकारीभाव, मुनि को समकिती को, ज्ञानी को होता है, उस ओर का लक्ष्य छोड़कर.... छोड़कर तो एक अपेक्षा से कहना है, वरना तो इस ओर अनुसरण करके - स्वभाव का अनुसरण करके निमित्त का अनुसरण जो था, वह उपशम हो गया। चन्दुभाई! ऐसी बातें हैं बापू! आहाहा! अरे! कोई ऐसा कहता है कि ज्ञानी है, उसको राग और दुःख होता ही नहीं तो उसकी दृष्टि झूठी है। समझ में आया? उसका ज्ञान झूठा है। आहाहा! सम्यग्ज्ञान हुआ.... पर के साथ एकत्वबुद्धि कहो, संकरदोष कहो, एकत्वबुद्धि कहो, पहले में, हों! दूसरे में एकत्व नहीं संकर में-दूसरे में सम्बन्ध, दूसरी स्तुति में सम्बन्ध, पहली स्तुति में एकत्व का संकर।

श्रोता : संकर शब्द तो एक ही रहा तो फेरफार क्या है?

पूज्य गुरुदेवश्री : फेरफार है। है न? जो संयोग था, संयोग मेरा है — ऐसी बुद्धि मिथ्यात्व है और वह छूटने के बाद संयोग में अस्थिरता हुई, वह चारित्रदोष है।

श्रोता : संकर शब्द से तो मिथ्या....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं... नहीं; यहाँ तो संकर शब्द से संयोग और सम्बन्ध। और पहला संयोग और सम्बन्ध पर के साथ एकत्वबुद्धि का; दूसरे में पर के साथ सम्बन्ध अपनी कमजोरी से निमित्त का सम्बन्ध करता था। बहुत सूक्ष्म बात है। बापू! गाथा बहुत अच्छी आयी है, भाई, हों! सुमेरुमलजी! ऐसी चीज है बापू! आहाहा!

यह तो तीन लोक के नाथ जिनेन्द्रदेव का फरमान है, उसे सन्त आड़तिया होकर बात करते हैं। आहाहा! अरे प्रभु! आहाहा! तेरे पूर्णस्वरूप की स्तुति करने के लिए प्रथम तो अपने शुद्धस्वभाव की स्तुति अर्थात् सत्कार और स्वीकार करना पड़ेगा। समझ में आया? आहाहा! भगवान आत्मा अनन्त गुण रत्नाकर-समुद्र, अनन्त गुण का — रत्नों का आकर/समुद्र भगवान का स्वीकार और सत्कार, वह सम्यग्दर्शन, वह भगवान आत्मा की पहली स्तुति है। समझ में आया? ऐसी बातें हैं भाई! यहाँ तो अपने दूसरी स्तुति चलती है।

भाव्यभावक भाव का संकर दोष-सम्बन्ध.... यहाँ यह सम्बन्ध लेना। संकर शब्द (से आशय) सम्बन्ध। समझ में आया? पहले में द्रव्येन्द्रिय, भावेन्द्रिय और भगवान, वह

परज्ञेय थे; स्वज्ञेय के साथ परज्ञेय का सम्बन्ध एकत्वबुद्धि / मिथ्यात्व था। आहाहा! समझ में आया? यह भावेन्द्रिय; शरीर परिणाम को प्राप्त द्रव्येन्द्रिय; भावेन्द्रिय खण्ड-खण्ड ज्ञान को बतलाती है वह; और इन्द्रिय का विषय सब परज्ञेय है, वह स्वज्ञेय नहीं है। समझ में आया? आहाहा! उस स्वज्ञेय को पर्याय में ज्ञेय बनाकर, परज्ञेय का लक्ष्य छोड़कर... आहाहा! ऐसी बहुत शर्तें बापू!

जो परद्रव्य की और राग की स्तुति करता था, वहाँ तो प्रभु की — स्व की अस्तुति थी। आहाहा! समझ में आया? पूर्णानन्द का नाथ प्रभु अनन्त गुण का सागर, जिसके प्रदेश-प्रदेश में अनन्त गुणरत्न के कमरे-भण्डार भरे हैं। आहाहा! वह उसे पर्याय में परज्ञेय बनाकर जो अनादि से भटकता था। आहाहा! तो पर्याय का स्वभाव तो स्व-परप्रकाशक है। अत: वह ज्ञान की पर्याय, अज्ञानी की भी पर्याय हो तो भी, पर्याय का स्वभाव तो स्व-परप्रकाशक है; अत: अकेले पर-प्रकाशक — परज्ञेय को जानने में अटक गया तो मिथ्यात्व है। आहाहा! परन्तु उस पर्याय में पर का ज्ञान होने पर भी, जब स्व-तरफ का ज्ञान होता है, आहाहा! तब वह परज्ञेयरूप से जानने में आता है परन्तु परज्ञेय से मेरी चीज सम्बन्धवाली है - ऐसा नहीं है। आहाहा! अब ऐसा उपदेश लोगों को क्या हो? बापू!

इसमें यह मोह का नाम लिया है। **उसमें 'मोह' पद को बदलकर उसके स्थान पर राग....** लेना। है? धर्मी को भी, समकिती को भी, ज्ञानी को भी कर्म का — भावक का अनुसरण करके जो राग था, वह राग, स्वभाव का अनुसरण करके राग को उपशम कर दिया। क्षपक। (क्षय की बात) बाद में आयेगी। ऐसी शैली ली है। आहाहा! ऐसा **द्वेष,...** का ले लेना। समकिती को भी द्वेष का अंश आता है। आहाहा! मुनि को भी द्वेष का अंश आता है। यह नहीं, यह है, यह है - ऐसा विकल्प राग है और यह नहीं है — ऐसा विकल्प द्वेष है।

श्रोता : सत्य निरूपण करता है, द्वेष किसका?

पूज्य गुरुदेवश्री : विकल्प है, स्थापना करता है न? ज्ञाता, ज्ञानरूप कहाँ रहा वहाँ? ऐसा अंश आता है — १४३ (गाथा में) लिया है पीछे कर्ताकर्म में (यह बात है)। वह स्थापित करता है, वहाँ तक अभी द्वेष अंश है १४३ (गाथा) कर्ताकर्म (अधिकार)!

समयसार में तो सब है, बहुत भरा है, सारा समुद्र है। एक-एक पंक्ति और एक-एक गाथा! अजोड़ चक्षु!! भगवान के श्रीमुख से निकली हुई दिव्यध्वनि, यह सन्त उसके द्वारा बात करते हैं। आहाहा!

कहते हैं कि द्वेष, ऐसे **क्रोध,...** समकिती को जरा क्रोध भी आता है। एकत्वबुद्धि टूट गयी है परन्तु अस्थिरता का क्रोध आता है, वह भाव्य कहा जाता है। क्रोध का उदय है, वह भावक और उसके योग्य यह अपनी पर्याय अनुसरकर होता है, वह क्रोध, उसको उपशम करके स्वभाव की विशेष एकता करके-स्वभाव का विशेष अनुसरण करके (क्रोध को) दबा देना, वह दूसरी स्तुति है। वह भगवान आत्मा की स्तुति की अधिक दशा, वह दूसरी (स्तुति) है, दूसरे नम्बर की ऐसा नहीं, अधिक है। आहाहा! अरे! यह कहाँ बापू?

इसी तरह **मान,....** जरा मान भी आता है। समझ में आया? कल तो दृष्टान्त दिया था न, नेमिनाथ भगवान का? भगवान हैं, तीन ज्ञान के धनी हैं, क्षायिक समकिती हैं। योद्धाओं की सभा भरी हुई थी, उसमें चर्चा होते-होते कोई कहता है पाण्डव योद्धा है, कोई कहता है भीम ऐसा है, कोई कहता है अर्जुन ऐसा है, कोई कहता है अमुक ऐसा है, कोई ऐसे बोले सब है, किन्तु देखो! भगवान यहाँ गृहस्थाश्रम में विराजमान हैं, उनका बल दूसरे प्रकार का है — ऐसा बल किसी का नहीं है तो भगवान ने सभा में पैर नीचे रखा कि हिलाओ। कृष्ण आये, हिले कहाँ से? इतना मान! आहाहा! झूम गये पैर पर, परन्तु नहीं हिला। आत्मा के बल की तो क्या बात करना? आहाहा! तो ऐसा कोई मान आता है। मान का उदय भावक और उसके अनुसरण से होता है, उसको स्वभाव का विशेष अनुसरण करके दबा देना। समझ में आया? कहो रतिभाई! ऐसा है यह।

इसी तरह **माया,....** कपट। वहाँ माया का उदय भावक हो, उस ओर अनुसरण करके समकिती को ज्ञानी को भी जरा माया आ जाती है। माया शल्य नहीं। माया की अस्थिरता समकिती को ज्ञानी को (आ जाती है)। आहाहा! उसको पर के अनुसरण में जो था, वह यहाँ स्वभावसन्मुख अनुसरण बढ़ा देना उससे वह दब जाती है - माया उपशम हो जाती है।

श्रोता : मुनिदशा में माया किस प्रकार की होगी?

पूज्य गुरुदेवश्री : अस्थिरता की।

श्रोता : परन्तु किस प्रकार की ?

पूज्य गुरुदेवश्री : अस्थिरता की। ऐसा कहा गया, दूसरा क्या कहें ? शल्य नहीं - मिथ्यादर्शन (शल्य), निदान शल्य, माया शल्य, यह शल्य नहीं परन्तु जरा माया का भाव आता है, वह भाव्य है। उसको निमित्त के अनुसरण करने के भाव में जो भाव्य/माया थी, उसे न होने देना और अपने ज्ञायकस्वभाव की ओर विशेष-अधिक अनुसरण करना, यह दूसरे प्रकार की स्तुति है। यह तो भाषा में जो आता है, उसे भलीभाँति तोल-तोल कर समझना चाहिए; कुछ फेरफार नहीं होता। आहाहा! ऐसा मार्ग है! यह वहाँ ले जाना है न टेपरिकार्डिंग ? ऐसा सुना है, वे लोग... आहाहा!

इसी तरह लोभ... यह तो कल आ गया है। है! आसक्ति का थोड़ा लोभ भी है, तो वह जो भाव्य है, लोभकर्म का-भावक कर्म, उसका अनुसरण करके इतने सम्बन्ध में जो लोभ का भाव्य था, वह नहीं होने देना, उस ओर का अनुसरण छोड़ देना और स्वभाव की ओर का अनुसरण अधिक करना, उससे लोभ का उपशम हो जाता है, दब जाता है। समझ में आया ?

इसी तरह **कर्म....** आठों ही कर्म - कर्म के सम्बन्ध में — आठ कर्म के सम्बन्ध में जो कुछ भाव्यदशा होती थी... आहाहा! अभी तो है न, ज्ञानी को आठ कर्म निमित्त है न ? निमित्त के अनुसरण से अपनी पर्याय में विकृत अवस्था है; बिल्कुल न हो, तब तो वीतराग हो जाये। आहाहा! कर्म से नहीं परन्तु कर्म के निमित्तपने के लक्ष्य से जो विकृत अवस्था थी... आहाहा! वह कर्म का सम्बन्ध जितने अंश में छोड़ दिया.... कर्म मेरा है — यह दृष्टि तो पहले छूट गयी परन्तु इस कर्म के सम्बन्ध में जो कुछ आसक्ति (अस्थिरता) थी, आहाहा! वह भी अन्तरस्वभाव का अनुसरण करके, उस कर्म के सम्बन्ध की आसक्ति को दबा देता है। आहाहा! ऐसी बातें हैं। आहाहा! भाषा तो सादी है प्रभु! समझ में आये ऐसी है। आहाहा!

नोकर्म - देव, गुरु, शास्त्र, शरीर, वाणी, मन - ये सभी सामान्यरूप से नोकर्म हैं। उनके सम्बन्ध में.... सम्बन्ध सर्वथा छूट गया हो, तब तो वीतराग हो जाये परन्तु कुछ ऐसे

सम्बन्ध में भाव होता है तो उस नोकर्म को जीत लिया। उस नोकर्म की ओर का भाव उत्पन्न न होने देना और स्वभाव का अनुसरण करके उस भाव को दबा देना। आहाहा! कितनी गम्भीरता! गाथा में कितनी गम्भीरता!! आहाहा!

मन.... मन का सम्बन्ध है न? मन की एकता टूट गयी, परन्तु रागादि उत्पन्न होते हैं तो मन का सम्बन्ध है। मन के सम्बन्ध की ओर का जो भाव उत्पन्न होता था, उसे अन्तरस्वभाव का विशेष अनुसरण उत्पन्न करके, उस सम्बन्ध का भाव दबा देना — उपशम कर देना। आहाहा! समझ में आया? यह तो धीर का काम है भाई! यह कोई... आहाहा!

वचन.... वाणी के साथ इतना सम्बन्ध है न? राग है, वचन के सम्बन्ध में वह भाव्य हुआ, उस भाव्य को स्वभाव का अनुसरण करके दबा देना। ऐसी बातें हैं। समाधिशतक में तो यहाँ तक कहा है कि उपदेश का विकल्प आता है... हम मुनि हैं, आनन्द है, ज्ञान है, शान्ति है परन्तु यह विकल्प आता है - इतना उन्माद है। मिथ्यात्व का उन्माद नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बातें हैं। वीतरागी बिम्ब प्रभु, जिनबिम्ब.... भगवान आत्मा तो जिनबिम्ब है, उसमें से विकल्प उठना... आहाहा! वह दोष है। समझ में आया? वचन के सम्बन्ध में अपने जो विकल्प उठते हैं, वह सम्बन्ध छोड़ देना। आहाहा! वचन का जो इतना अनुसरण भाव में करता था, वह अनुसरण (छोड़ देना)। भगवान! यह तो दूसरे नम्बर की ऊँची स्तुति है न? उपशमधारा की स्तुति है न? आहाहा!

काय.... इस काया के सम्बन्ध में जो ऐसा लक्ष्य जाता है, इतना राग है। उसको स्वभाव के आनन्द के नाथ का अन्तर-अनुसरण करके काया सम्बन्धी के अस्थिरता के भाव्य को दबा देना।

श्रोता : अस्ति का एक कथन करने के बदले यह नास्ति के पचास कथन करने से....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं; सबका विस्तार है; भिन्न-भिन्न भाव होता है न, एक प्रकार नहीं होता। भिन्न-भिन्न भाव होता है — भिन्न-भिन्न भाव। अभी तो आगे लेंगे, विशेष लेंगे। असंख्य प्रकार का विभाव लेंगे अभी तो। सामान्य के लिये तो बात की। यह तो निर्जरा अधिकार में नहीं आता? सामान्य के लिये तो परिग्रह का त्याग किया। अब विशेष

के लिये एक-एक का त्याग कराते हैं। आता है ? राग-द्वेष... आहार-पानी... यह तो अलौकिक बातें हैं। आहाहा!

यह ग्यारह सूत्र रखकर **ग्यारह सूत्र व्याख्यान करना....** है न ? फिर यह समझने के लिए प्रत्येक की व्याख्या करना।

श्रोत्र.... श्रोत्र इन्द्रिय की तरफ का लक्ष्य होने से जो विकृत भाव्य होता था, आहाहा! उसे आत्मा का विशेष अनुसरण करके दबा देना, उपशम करना, यह दूसरे प्रकार की स्तुति है। आहाहा! सुनने में भी जो सुनने में राग आता है, उस राग की एकता तो पहले तोड़ दी है परन्तु सुनने के भाव में वाणी का राग आता है, उसे अपने स्वभाव का उग्र आश्रय लेकर दबा देना - ऐसी बातें हैं। तीन लोक के नाथ जिनेश्वरदेव की दिव्यध्वनि में यह आया है और (उसे) सन्त, जगत के समक्ष आड़तियारूप से प्रसिद्ध करते हैं। आहाहा! इसमें वाद और विवाद करते हैं। ऐसे **चक्षु...** आँख के सम्बन्ध में पर तरफ का लक्ष्य जाता है। आहाहा! इतना स्वभाव का आश्रय विशेष करके, उस भाव को उत्पन्न न होने देना, वह स्तुति है। इसी तरह **घ्राण...** घ्राण में जो सुगन्ध के भाव का लक्ष्य जाता है, वह स्वभाव का अनुसरण करके वह अस्थिरता का भाव उत्पन्न न होने देना, उपशम कर देना, वह दूसरी स्तुति है।

इसी तरह **रस**-रसनेन्द्रिय — ज्ञानी को भी रसनेन्द्रिय की ओर की वृत्ति में अस्थिरता होती है। समझ में आया ? आहाहा! रात्रि को कहा था। एक-तीर्थंकर हो, चक्रवर्ती हो, कामदेव-सोलह, सत्रह, अठारह (शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, अरनाथ) उनका बत्तीस ग्रास का आहार है। ग्रास, तो एक-एक ग्रास की कीमत तो.... हीरे की भस्म हो, उसे घी में गरम करके, गेहूँ हो, उस घी में भस्म डालकर गेहूँ डालकर वह भस्म गेहूँ पी जाये... समझ में आता है ? है करोड़ों रुपये की कीमत की वह गेहूँ की रोटी बनाते हैं। इसमें कहाँ तुम्हारी भस्म-बस्म आयी ? आहाहा! तो जिसके बत्तीस ग्रास में एक ग्रास को छियानवें करोड़ सैनिकों को पाचन करने की शक्ति नहीं। छियानवें करोड़ सैनिक उसका एक ग्रास नहीं पचा सकते — रात्रि में तू था या नहीं ? ऐ... ? वह समकिती, क्षायिक समकिती तीन ज्ञान का धनी, वह बत्तीस ग्रास का खाने का विकल्प आता है, वह

आकुलता है, उस ग्रास को खाता नहीं; वह राग आया, उसका वेदन करता है। वह (ग्रास) तो जड़ की क्रिया है। बालचन्दजी! यह माल-माल की बात चलती है यहाँ। प्रभु तू कौन है? आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द के नाथ से भरा है न तू! आहाहा! तू अनन्त महा गुण का गोदाम है न नाथ! आहाहा! उसका अनुसरण करके एकत्वबुद्धि तोड़ना और उसका अनुसरण करके अस्थिरता की पर्याय उत्पन्न न होने देना... आहाहा! ऐसी बातें हैं। पहले तो पकड़ में कठिन पड़ता है। हैं! आहाहा! भाई! वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा, आत्मा का स्वभाव जानना और जानने के बाद भी राग आता है, आहाहा! तो राग कहो या दुःख कहो। समझ में आया? आहाहा!

रसन.... यह तो रसन आया न? समकिती, क्षायिक समकिती तीर्थंकर, दूसरे - चक्रवर्ती को भी होता है परन्तु यहाँ तो तीर्थंकर को तो ऐसा आहार होता है, तथापि नीहार नहीं होता। दूसरे चक्रवर्ती को ऐसा बत्तीस ग्रास का आहार होता है, नीहार होता है। आहाहा! यहाँ तो जरा एक रोटी अधिक पड़ जाये तो दस्त हो (जाते हैं।) वह बत्तीस ग्रास हीरे की भस्म, एक-एक दाने में करोड़ों हीरे की भस्म दाने में चढ़ गयी, उसकी रोटी बनायी, वह भी रसोईया, अधिकारी होता है; वह स्वयं नहीं बनाता, बारह महीने में उसकी तैयारी करता है। एक दिन की चक्रवर्ती की रसोई के लिये (बारह महीने तैयारी करता है)। भगवान के लिये तीर्थंकर के लिये... आहाहा! तैयारी करता है कि यह करना, यह करना, यह करना... बारह माह तक, तब एक बार हुक्म आता है, अमलदार रसोईया को कि आज यह रसोई बनाओ। ए चन्दुभाई!

श्रोता : सब पुण्य का प्रताप है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! वह बत्तीस ग्रास के आहार की क्रिया तो उससे होती है। मुनि को भी विकल्प आता है 'संयम के हेतु से योग प्रवर्तना' — आहारादि लेने का भाव आता है परन्तु वह भाव जरा शुभ है और यह जो संसार के लिये प्राणी आहार करते हैं, वह भाव अशुभ है। आहाहा! समकिती को भी भोग का भाव आता है। आहाहा! इतना दुःख है। समकिती को भी पंचम गुणस्थान तक रौद्रध्यान होता है। आहाहा! इतना धर्मी जीव को भी दुःख है। भगवान आनन्दस्वरूप से विरुद्ध रौद्रध्यान में गया। आहाहा! पंचम

गुणस्थानवाला, हों! चौथे गुणस्थान में ज्ञानी तो ठीक, पंचमवाले तक रौद्रध्यान है और छठवें तक आर्तध्यान है। वह आर्तध्यान दुःखरूप है या सुखरूप है ? आहाहा!

यहाँ कहते हैं **रसन....** आहाहा! यह बत्तीस ग्रास का आहार लेने की वृत्ति उठती है, यह रसन का इतना सम्बन्ध है। यह सम्बन्ध, भगवान अतीन्द्रिय आनन्द के नाथ- अतीन्द्रिय आनन्द का भोजन लेकर इस राग को दबा देता है। सच्चिदानन्द प्रभु, आहाहा! सत-शाश्वत् ज्ञान और आनन्द का नाथ — भण्डार प्रभु, अपना अनुसरण करके एकत्वबुद्धि को तो तोड़ दिया है, वह तो पहली स्तुति है परन्तु दूसरी अस्थिरता की वृत्ति उत्पन्न न होने देना। आहाहा! इतनी स्वभाव की स्तुति / सत्कार / स्वीकार विशेष हो गया है। समझ में आया ? ऐसी बातें हैं प्रभु! क्या हो ? आहाहा! अभी तो बहुत फेरफार हो गया है। अभी तो चोर कोतवाल को दण्डे ऐसा हो गया है। अधिक चोर इकट्ठे हुए न! अरे प्रभु! आहाहा! '**रसन**' — यह तो रसन का उत्कृष्ट दृष्टान्त लिया है। तीर्थंकर क्षायिक समकिती तीन ज्ञान के धनी माता के गर्भ में आये हैं और फिर जन्म लेते हैं तो आहार का भाव तो आता है, परन्तु वह भाव, राग है। उस राग को स्वभाव का विशेष अनुसरण करके दूर से हटाना अर्थात् उत्पन्न नहीं होने देना। आहाहा! सूक्ष्म बात है भाई! गाथा ऐसी आ गयी है। सुमेरुमलजी! ठीक! हैं ? भाग्यशाली को काम में पड़े ऐसी बात है। आहाहा! आहाहा!

फिर **स्पर्शन....** स्पर्शन - स्पर्शन के सम्बन्ध में भी ज्ञानी को भी भोग का राग आता है। आहाहा! क्षायिक समकिती तीन ज्ञान के धनी तीर्थंकर - चक्रवर्ती छियानवें हजार स्त्रियों से विवाह करते हैं। भरतेश वैभव में कथा है, भरतेश वैभव में (कि) एक-एक दिन में सैकड़ों राजकुमारियों से विवाह करते हैं। आहाहा! है समकिती, यह राग इतना है। समझ में आया ? उस राग की एकत्वबुद्धि तो तोड़ दी है परन्तु राग की अस्थिरता को स्वभाव के आश्रय से (तोड़ देते हैं)। उपशमश्रेणी! आगे लेते हैं न, अन्दर जाते हुए स्वसंवेदन बल में जाने पर वह उपशम हो जाता है। भोग का भाव, स्पर्श का भाव, उपशम हो जाता है। लो! यह चन्दुभाई... ! इसलिए सब यहाँ नहीं आये, संक्षिप्त किया होता तो भी यह तो... लम्बा-लम्बा करते हैं। है ?

इन पाँच के सूत्रों को इन्द्रियसूत्र के द्वारा अलग व्याख्यानरूप करना; इस

प्रकार.... अब अभी इतने से नहीं... **सोलह सूत्रों को भिन्न-भिन्न व्याख्यानरूप करना....** प्रत्येक का भिन्न-भिन्न व्याख्यान (करना)। **और इस उपदेश से अन्य भी विचार लेना....** आहाहा! असंख्य प्रकार का विभाव है, आहाहा! अनेक प्रकार हैं। समकिती को असंख्य प्रकार का विभाव है। आहाहा! तो ऐसे व्याख्यान करना। वह भाव्य है, उसको अपने स्वभाव का अनुसरण करके उत्पन्न न होने देना, वह अपनी स्तुति है। अपनी - भगवान की प्रशंसा है। ऐसा वहाँ सुना नहीं — सरदारशहर में कहीं नहीं। प्रभु! का मार्ग बापू! यह 'हरि का मारग है सूरों का, यह कायर का नहीं काम, जो न' — ऐसा आता है न? तुम्हारे 'यह हरि का मारग है सूरों का, कायर का नहीं काम जो न।' 'प्रथम-पहले मस्तक देकर, पीछे लेना हरि का नाम जो न' हरि अर्थात् यह भगवान। आहाहा! यह लोगों में ऐसा स्तुति में-भक्ति में आता है, हमारे तो उस ओर के पालेज में सभी ग्राहक थे - ऐसे सब। एक ब्राह्मण था हमारा ग्राहक उस समय था परन्तु वेदान्त का बड़ा और सबका गुरु था किन्तु हमारा ग्राहक था, उसके गाँव का नाम भूल गये हैं। मेहराज गाँव है। मेहराज और तिलोद दो गाँव में हमारी उगाही थी, उन दो गाँवों में अधिक थी, उनमें यह मेहराज का ब्राह्मण था, वह माल लेने आता, उसके भक्त हों वे उसके पैर पड़ते। हम उसके घर पैसे लेने जायें तो खाट डाल देता। मेहराज गाँव पालेज से तीन गाँव (दूर है)। यह तो सत्रह, अठारह, उन्नीस वर्ष की शरीर की आयु की बातें हैं। आहाहा! उस समय सब देखा-जाना, परन्तु यह नहीं। आहाहा!

एक तो दो बाबा आये थे, उस समय की बात है। ६५-६६ या ६७ की बात है। एक था वेदान्ती और एक था कबीर (पन्थी) और एक था ईश्वरकर्ता माननेवाला। दो बड़े साधु आये, वहाँ हमारे धर्मशाला है, वहाँ उतरे और हमें-जैनों को पता पड़ा कि ये लोग चर्चा करनेवाले हैं। हम सब गये। उसमें एक साधु ईश्वर कर्ता माननेवाला था — इस जगत का कर्ता ईश्वर है, हम जैन लोग सुनने गये तो वह सामने कहता है, कर्ता हो तो कहाँ खड़े रहकर ईश्वर ने (जगत को) बनाया? ईश्वर को किसने बनाया? और ईश्वर ने कहाँ खड़े रहकर जगत को बनाया? तो खड़े रहकर बनाया तो कोई चीज तो रही। समझ में आया? वह कबीर (पन्थी) हमारे सामने देखे - जैनियों के सामने - क्यों भाईयों! उसे पता है कि यह जैन है न! यह तो सत्तर-बहत्तर वर्ष पहले की बात है। ठीक है; ईश्वर हो तो कहाँ खड़ा

रहा और यह सब सामग्री कहाँ से लाया, कहाँ से यह बनाया ? नहीं है, उसमें से बनाया ? नहीं हो उसे बना सकते हैं ? है उसको बनाना और न हो उसको बनाना-बिल्कुल झूठ है, बालचन्दजी ! यह तो ७५ वर्ष पहले (की बात है।) आहाहा ! एक था कबीर का साधु और वह था लट्ठ जैसा और अभिमानी — मेरा शिष्य हो तो समझाऊँ, अन्य को ऐसा कहा कबीर ने। यह कहे शिष्य भी पहला तू समझा तो सही कि ईश्वर तेरा है और ईश्वर ने यह बनाया तो ईश्वर कहाँ रहा था, कोई स्थान था या नहीं, उसने कोई स्थान बनाया ? वैसे यह बात तो अलौकिक है बापू ! असंख्य प्रकार की बात।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)